IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन भारत में स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार

(Women's property rights in Ancient India)

डॉ अंजलि वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर

राजनीति विज्ञान विभाग

शहीद दुर्गा मल्ल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोईवाला, देहारादून

सारांश : विश्व के अधिकांश सभ्य समाजों के विपरीत भारतीय समाज में स्त्री को न तो कभी सम्पत्ति माना गया और न ही पति को यह अधिकार दिया गया कि वह जब चाहे उसे बेच दे । यद्यपि साहित्य में इसके कतिपय उदाहरण अवश्य मिलते है लेकिन वे अपवादस्वरूप ही है और ऐसे कृत्यों की भृत्सना की गई है । वास्तव में प्राचीन भारत में स्त्री की सामाजिक स्थिति अत्यन्त उन्नत थी । पति और पत्नी दोनों को परिवार की सम्पत्ति का संयुक्त स्वामी समझा जाता था । यहां तक की विवाह के अवसर पर पति को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह अपनी पत्नी के वित्तीय अधिकारों की रक्षा करेगा । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्राचीन हिन्दू समाज में स्त्रियों को एक सीमा तक साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे।

कुंजी शब्द : दायभाग, मिताक्षरा, उत्तराधिकारिणी, याज्ञवल्क्य स्मृति

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक रहा है जिसमे संपत्ति के समस्त अधिक परिवार के पुरुष मुखिया को ही प्राप्त होते थे, परंतु समय सामी पर स्मृतिकारों द्वारा स्त्रियों को भी साम्पत्तिक प्रदान किए गए थे । तैत्तिरीय संहिता में पत्नी को पारिणाह्य अर्थात घर की वस्तुओं की स्वामिनी स्वीकार किया गया है । शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पत्नी पति के दाय की उत्तराधिकारिणी होती है । दम्पत्ति शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि पति-पत्नी दोनों परिवार की सम्पत्ति के संयुक्त स्वामी होते थे । लेकिन कालान्तर में याज्ञिक कर्मकाण्डों में पवित्रता का विचार बहुत अधिक बढ़ने से स्त्रियों को पहले तो याज्ञिक कार्यों से बहिष्कृत कर दिया गया और फिर साम्पत्तिक अधिकारों से ।[1] परवर्ती शास्त्रकारों में सर्वप्रथम बौधायन से स्त्री को दायाधिकार से वंचित किया । उनके अनुसार पत्नी का पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता, क्योंकि वह अबला है और सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकती।"[2] मनु के अनुसार पति के जीवन काल में पत्नी को किसी भी प्रकार की सम्पत्ति का अधिकार नहीं है । उसे पति से केवल भरण-पोषण प्राप्त करने का ही अधिकार है जो कि उसके पतिता एवं दूषिता होने अथवा नैतिक पतन की अवस्था में भी मान्य है । मध्यकालीन टीकाकारों जैसे जीमूतवाहन, अपरार्क, देवण्णभट्ट तथा मित्रमिश्र आदि ने भी पत्नी के साम्पत्तिक अधिकार का विरोध किया है ।[3] परन्तु इसके बावजूद शास्त्रकारों का एक ऐसा वर्ण था जिसने स्पष्ट रूप से पत्नी के इस अधिकार का समर्थन किया है । धर्मशास्त्रकारों में सर्वप्रथम जैमिनी ने स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार का समर्थन किया है । आपस्तम्ब के अनुसार चूंकि पति और पत्नी दोनों बराबर है इसलिए पति की अनुपस्थिति में उसे

परिवार के आवश्यक कार्य के लिए धन खर्च करने का अधिकार है।[4] याज्ञवल्क्य के अनुसार यद्यपि पत्नी को विभाजन की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है, लेकिन यदि पिता अपने जीवन काल में पुत्रों के बीच सम्पत्ति का बटवारा करता है तो पत्नी को भी पुत्रों के समान सम्पत्ति का एक भाग प्राप्त करने का अधिकार है । किन्तु उसका यह अधिकार उस अवस्था में ही मान्य है जबकि उसे पति या श्वसुर से स्त्रीधन नहीं मिला है हो । लेकिन यदि उसे स्त्रीधन मिला है तो सम्पत्ति का उतना भाग ही और दिया जायेगा जिसे मिलाकर पुत्र के एक भाग के बराबर हो जाये।" अन्यत्र उनका कथन है कि जो पति' अनुचित रूप से आज्ञाकारिणी, कुशल, वीरपुत्रों को जन्म देने वाली और मधुरभाषिणी पत्नी का त्याग करता है तो उसे पति की सम्पत्ति का एक तिहाई भाग मिलना चाहिए।" लेकिन अल्तेकर के अनुसार समाज ने शायद ही स्त्री के इस अधिकार को स्वीकार किया हो, क्योंकि अन्य धर्मशास्त्रकारों ने इसका कहीं भी समर्थन नहीं किया है।" विज्ञानेश्वर के अनुसार पत्नी पति की इच्छा से ही सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है अपनी इच्छा से नहीं।" विश्वरूप के अनुसार पति-पत्नी में कोई विभाजन नहीं होता, पति यदि चाहे तो स्नेहवश अपनी पत्नी को एक भाग दे सकता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि पत्नी को किसी भी अवस्था में पति के जीवन काल में सम्पत्ति के विभाजन की मांग करने का अधिकार नहीं था और न ही वह पति से पृथक् सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी । वास्तव में परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी पति ही माना जाता था । लेकिन इतना अधिकार उसे अवश्य था कि पति की अनुपस्थिति में वह परिवार के आवश्यक कार्यों हेतु धन खर्च कर सकती थी । विधवा स्त्रियों को भी प्रारम्भ में अपने मृत पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं था ।[5] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार विधवाओं का अपने पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता । आपस्तम्ब ने भी विधवा के इस अधिकार को स्वीकार नहीं किया है । उनके अनुसार पति की मृत्यु के बाद पुत्र के अभाव में उसका उत्तराधिकारी सपिण्ड, सपिण्ड के अभाव में आचार्य और आचार्य के अभाव में उसका अन्तेवासी सम्पत्ति का अधिकारी होता है।"[6] बौधायन ने भी उत्तराधिकारियों की जो एक लम्बी सूची दी है उसमें विधवा पत्नी का उत्तराधिकारियों के रूप में नामोल्लेख तक नहीं मिलता । कौटिल्य के अनुसार जिस सम्पति का कोई उत्तराधिकारी न हो उसे राजा ले, किन्तु स्त्री के जीवन निर्वाह और श्राद्ध कार्यों के लिए उसे अवश्य धन दे ।[7] इससे स्पष्ट होता है कि पुत्रहीन विधवा अपने पति की सम्पत्ति की स्वामिनी नहीं होती थी । मनु ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी उसके पुत्र होते हैं, लेकिन यदि पुत्र न हो तो उसके उत्तराधिकारी पिता या भाई होते हैं, किन्तु यदि ये भी न हो तो सपिण्डों में सबसे निकट सम्बन्धी उस धन का भागी होता है और इसके अभाव में क्रमशः सजातीय, आचार्य अथवा शिष्य उस धन के भागीदार होते हैं।"[8] इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि दूसरी शताब्दी ई०पू० तक विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं माना जाता था । अल्तेकर के अनुसार विधवाओं को उत्तराधिकार से वंचित रखने का कारण सम्भवतः यह था कि उस समय समाज में विधवाओं के पुनर्विवाह तथा नियोग की प्रथा प्रचलित थी जिसके कारण विधवाओं की संख्या कम थी । लेकिन ईसा की पहली सहस्राब्दी में इन दोनों प्रथाओं का लोप हो जाने के कारण समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी । जिसके कारण सामाजिक दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि परिवार में स्त्री को कुछ आर्थिक अधिकार प्रदान किये जाये । इसलिए परवर्ती शास्त्रकारों ने पुत्रहीन विधवा को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी घोषित किया जिससे उसकी दशा में कुछ सुधार हुआ ।[9]

प्रो० हरिदत्त वेदालंकार" के अनुसार यद्यपि पहली सदी से पूर्व के कुछ शास्त्रकारों जैसे गौतम, विष्णु तथा शंख ने विधवा के साम्पत्तिक अधिकारों का समर्थन किया है, लेकिन उनके अर्थ तथा काल के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । उनके अनुसार सम्भवतः याज्ञवल्क्य पहला स्मृतिकार था जिसने स्पष्ट रूप से पुत्रहीन विधवा को मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी घोषित किया ।[10] याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके अधिकारी क्रमशः पत्नी, कन्या, दौहित्र, माता-पिता, भाई-भतीजे, बन्धु तथा शिष्य होते हैं । बृहस्पति ने भी विधवा के इस अधिकार का प्रबल समर्थन किया है । उनके अनुसारं चूंकि पत्नी अपने पति के शरीर का आधा भाग मानी जाती है इसलिए उसके होते हुए कोई दूसरा व्यक्ति कैसे

उसके पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता है । लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि यदि वह अपने पति के प्रति ईमानदार है तभी वह उसका उपभोग कर सकती है।" कात्यायन ने भी बृहस्पति के मत का समर्थन करते हुए पतिव्रता स्त्री को उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है, लेकिन साथ ही यह भी कहा है कि उसे इस सम्पत्ति के दान, विक्रय तथा गिरवी रखने का अधिकार नहीं है।" विज्ञानेश्वर के अनुसार यदि विधवा ब्रह्मचारिणी बनी रहे तो वह बिना किसी रुकावट के अपने पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है।" किन्तु जीमूतवाहन के अनुसार सिर्फ पुत्रहीन विधवा ही मृत पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है । जबकि स्मृतिचन्द्रिका के अनुसार माता पुत्रों के साथ मृत पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में विधवाओं को सम्पत्ति में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था । लेकिन कालान्तर में शास्त्रकारों ने उनके इस अधिकार का समर्थन किया । इस प्रकार यद्यपि वह जीवनपर्यन्त अपने पति की सम्पत्ति का उपभोग कर सकती थी, किन्तु उसे इस सम्पत्ति के विनियोग का अधिकार नहीं था । वह केवल पति के उत्तराधिकारियों की सहमति से ही उसका दान तथा विक्रय कर सकती थी, किन्तु धार्मिक कार्यों तथा पति को लाभ पहुंचाने वाले पुण्य कार्यों के लिए उसे व्यय कर सकती थी । उसकी मृत्यु के पश्चात् वह सम्पत्ति उसके पति के अन्य उत्तराधिकारियों को प्राप्त हो जाती थी । पुत्रियों को भी प्रारम्भ में पैतृक सम्पत्ति में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था । ऋग्वेद के अनुसार केवल वही कन्या पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होती थी जो अभ्रातृका होती थी ।[11] ऐसी अवस्था में साधारणतया कन्या का पिता अपने दामाद से समझौता कर लेता था कि वह पहले पुत्रिका - पुत्र को उसे अपना वंश चलाने के लिए देगा । लेकिन यदि भ्रातृयुक्त कन्या अविवाहित रहती थी तो वे पिता की सम्पत्ति के कुछ भाग की अधिकारिणी मानी जाती थी । परन्तु साधारणतया पुत्री को पिता की सम्पत्ति में कोई भाग नहीं मिलता था । प्रो० हरिदत्त वेदालंकार के अनुसार पुत्री को पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखने का प्रधान कारण पिण्डदान में उसकी असमर्थता थी ।

कालान्तर में शास्त्रकारों के एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसने भाई के न रहने पर भी बहिन के उत्तराधिकार को स्वीकार नहीं किया । बौधायन, वसिष्ठ तथा गौतम आदि शास्त्रकारों ने उत्तराधिकारियों की गणना में पुत्री का नामोल्लेख तक नहीं किया है। आपस्तम्ब के अनुसार उत्तराधिकारी के अभाव में जब सपिण्ड, या शिष्य कोई न हो, तभी पुत्री सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती है । लेकिन साथ गुरु ही उन्होंने यह भी कहा है कि पुत्र के न होने पर पिता को अपनी सारी सम्पत्ति धर्मकार्य में लगा देनी चाहिए परन्तु पुत्री को नहीं देनी चाहिए । जबकि इसके विपरीत कुछ शास्त्रकारों ने उदारतापूर्वक पुत्री के इस अधिकार को स्वीकार किया है । महाभारत के अनुसार अभ्रातृका कन्या को पूरी सम्पत्ति नहीं तो कम से कम आधी अवश्य मिलनी चाहिए । कौटिल्य ने भी पुत्री के प्रति सदाशयता दर्शित करते हुए अभ्रातृ कन्या को उत्तराधिकारी माना है, चाहे उसे कम ही हिस्सा क्यों न मिले ।[12]

याज्ञवल्क्य के अनुसार विधवा पत्नी तथा पुत्र के अभाव में पुत्री ही पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है । इस सम्बन्ध में बृहस्पति का कथन है कि चूंकि पुत्र और पुत्री दोनों समान रूप से माता-पिता के शरीर के अंश को लेकर उत्पन्न होते हैं अतः पुत्र के अभाव में उसे उत्तराधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता है । नारद ने भी इस कथन का समर्थन किया है।`` कात्यायन ने भी पुत्र के अभाव में पुत्री को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है । इस सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि क्या भ्रातृयुक्त कन्याओं को सम्पत्ति में हिस्सा मिलता था? वैदिक साहित्य में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता कि कन्या अपने भाई के साथ पैतृक सम्पत्ति की अधिकारी होती थी । लेकिन यदि वह अविवाहित रहती थी तो पिता की सम्पत्ति के कुछ भाग को प्राप्त करने की अधिकारिणी मानी जाती थी । परवर्ती शास्त्रकारों ने भी कन्या के इस अधिकार का समर्थन किया है । यास्क ने ऋग्वेद के एक श्लोक के आधार पर कन्याओं को भाईयों के साथ पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणी माना है । इसी प्रकार विष्णु तथा नारद ने कन्या के हिस्से का समर्थन तो किया है किन्तु उसे अपने हिस्से को ले जाने की अनुमति नहीं दी है । नारद के अनुसार कन्या उतना ही हिस्सा प्राप्त करे जितना उसके अविवाहित रहने तक व्यय होता है । मध्यकालीन टीकाकारों में विज्ञानेश्वर ने स्पष्ट रुप से पैतृक सम्पत्ति में कन्या को भाई के हिस्से का एक चौथाई देने का समर्थन किया है ।[13] जीमूतवाहन ने भी विज्ञानेश्वर के इस मत का समर्थन किया है ।[14] प्रो० हरिदत्त वेदालंकार के

अनुसार दुर्भाग्यवश शास्त्रकारों के समर्थन के बावजूद समाज ने कन्या के इस अधिकार का समर्थन नहीं किया । उनके अनुसार इसका कारण शास्त्रकारों द्वारा भाईयों के इस कर्त्तव्य पर अत्यधिक बल देना था कि पिता की मृत्यु के पश्चात् वे अपनी बहिनों का विवाह करे । विवाह के कर्त्तव्य पर अत्यधिक बल देने का यह परिणाम हुआ कि कन्या का पैतृक सम्पत्ति में कोई स्वतन्त्रत भाग नहीं रहा और यह समझा जाने लगा कि चूंकि कन्या को वैवाहिक धन और दहेज के रूप में पैतृक सम्पत्ति में पर्याप्त हिस्सा मिल जाता है, इसलिए उसे पृथक् रूप से धन देने की आवश्यकता नहीं है ।

निष्कर्ष रूप में प्रो० हरिदत्त वेदालंकार का यह मत अत्यन्त उचित प्रतीत होता है कि धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों की जानबूझ कर उपेक्षा नहीं की अपितु इसके पीछे दो प्रमुख कारण थे, एक- तत्कालीन परिस्थितियां और दूसरा- स्त्रीधन की व्यवस्था।' संयुक्त परिवार की व्यवस्था के कारण स्त्रियों के अधिकारों का प्रश्न नगण्य सा था । इस कारण शास्त्रकारों ने इसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा । दूसरा कारण स्त्रीधन की व्यवस्था थी । स्त्रियों को विवाह आदि अवसरों पर माता, पिता, भाई तथा पति आदि सम्बन्धियों से पर्याप्त मात्रा में धन (वस्त्राभूषण) मिल जाता था जिस पर उसका पूर्ण स्वत्व होता था ।[15] वे इसका यथेच्छ विनियोग करने के लिए स्वतन्त्रत थी तथा स्त्रीधन की उत्तराधिकारिणी भी पुरुषों की अपेक्षा वही होती थी । अतः इस प्रकार की व्यवस्था होने के कारण शास्त्रकारों ने स्त्रियों को पुरुषों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाने की आवश्यकता नहीं समझी ।

1. ए० एस० अल्तेकर, दि पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन,166
2. बौधायन धर्मसूत्र, 2/2/53, 'न दायं, निरिन्द्रियाः ह्यदायाश्च स्त्रियो मता इति श्रुतिः ।'
3. जीमूतवाहन, दायभाग, पृ० 209, अपरार्क, 2/114, देवण्णभट्ट, स्मृतिचन्द्रिका, पृ० 27, मित्रमिश्र, वीरमित्रोदयसंस्कारप्रकाश, पृ० 529,
4. हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० 447,
5. ए० एस० अल्तेकर, दि पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 216,
6. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति पर टीका, 2/52, 'तस्माद्पर्तुरिच्छया भार्याया अपि द्रव्यविभागो भवत्येव, न स्वेच्छया ।
7. अर्थशास्त्र, 3/5,
8. मनुस्मृति, 9/184-187

'न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहरा पितुः ।
पिता हरेदपुत्रस्यारिक्थं भ्रातर एव च ।
अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ।।'

9. ए० एस० अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ० 174-175,179-183,
10. हरिदत्त वेदालंकार, पूर्वोक्त, पृ० 476-477,
11. ऋग्वेद, 1/124/7 अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानाम्।'
12. अर्थशास्त्र, 3/5, 'द्रव्यम् पुत्रस्य सौदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च।'
13. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति पर टीका, 2/135,
14. दायभाग, 1/2/4,
15. कात्यायन, मिताक्षरा, 2/143, स्मृतिचन्द्रिका, 2/280-281, दायभाग, पृ० 93,